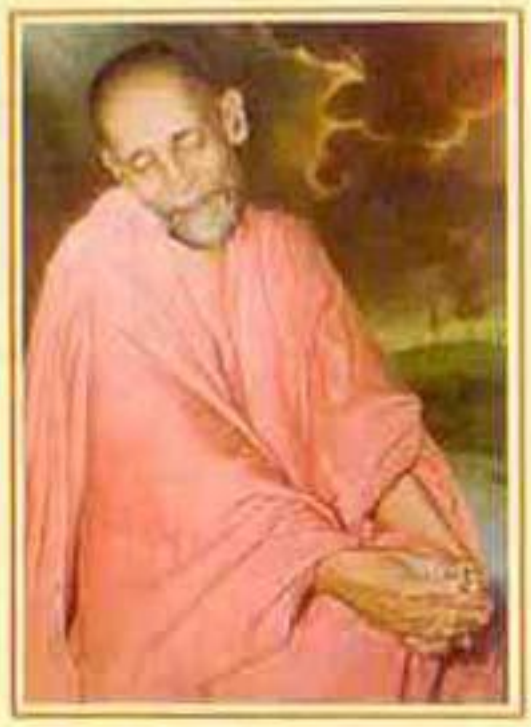

श्रीकृष्ण भावापन्न रस सिद्ध संत
श्रीराधाबाबा

संत्सग स्वाध्याय भावभावित भगवद्प्राप्त
संत सेठ श्रीजयदयाल गोयन्दका

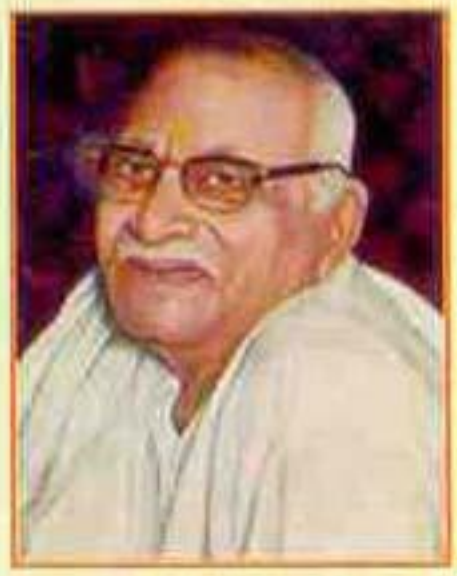

महाभाव रस निमग्न
श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

गीतावाटिका, गोरखपुर में स्थित श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार की समाधि

बसन्त पंचमी, ११ फरवरी २००८

''कल्याण'' के यशस्वी सम्पादक रस-सिद्ध, गृहस्थ भगवत् प्राप्त सन्त श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार के नाम से संभवत: आप सब सुपरिचित होंगे ही। राजस्थान के मूल निवासी पूज्य पोद्दारजी ने गोरखपुर को; आध्यात्मिक एवं भगवत् मार्ग के लिए साधना-स्थली बनाया। पूज्य श्रीपोद्दारजी के साथ गीतावाटिका, गोरखपुर में ही परम विरक्त एक सन्यासी भी प्रभु सेवा में लीन रहते थे, जिन्हें ''राधा बाबा'' के नाम से जाना जाता था। यद्यपि श्रीपोद्दारजी का डालमिया परिवार से कोई रक्त संबंध नहीं था तदापि वे हम सभी के हृदय में परिवार के मुखिया के रूप में विराजमान रहे। मैं अपने को परम सौभाग्यशाली समझता हूँ कि उनका मुझे पुत्रवत् स्नेह प्राप्त हुआ एवं मैं उन्हें 'ताऊजी' के नाम से सम्बोधित करता था। पूज्य ताऊजी की अनुकम्पा से ही मुझे वीतरागी सन्त पूज्य चरण राधा बाबा का भी परम दिव्य सान्निध्य प्राप्त हुआ एवं राधाकृष्णमय इन दो परम विलक्षण

सन्तों की कृपा रूपी अमृत वर्षा मेरे ऊपर सदैव रही एवं आज भी मैं उसकी निरन्तर अनुभूति करता रहता हूँ। पूज्य ताऊजी एवं पूज्य श्रीराधा बाबा के दिव्य सान्निध्य एवं अमृत वचनों से अनेकों ऐसी जानकारियाँ प्राप्त हुईं जो मनुष्य मात्र के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन के उत्थान के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। सभी को इस अमृत गंगा के अवगाहन (स्नान) का लाभ प्राप्त हो सके, इसके लिए मैं कुछ प्रसंगों को लिपिबद्ध कर रहा हूँ —

(१) श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार; जिन्हें बहुत लोग "भाईजी" सम्बोधित करते थे; के विषय में पूज्य श्रीराधा बाबा ने यह रहस्य उद्घाटित किया था —

"आप निश्चय समझें भाईजी निरन्तर राधाभावाविष्ट रहते हैं, जिस प्रकार आर्चविग्रह में अर्चावतार होकर विलक्षण रूप से अघटन घटन संभव है उसी प्रकार दूसरे शब्दों में यह समझ लें कि भाईजी के नाम से अभिहित इस पँचभौतिक ढाँचे में राधारानी का अवतरण हो गया है। जब तक यह ढाँचा रहेगा तब तक श्रद्धा की जरूरत नहीं है, उन्मुख होते ही अधिकार के अनुसार लाभ मिल जाएगा। भाईजी का वस्तुगुण इतना अधिक है कि जो प्राणी इनके संस्पर्श में आये, आयेंगे सबके सब भगवान को इस जन्म या एक और (केवल एक और) जन्म धारण करके अपनी इच्छा के अनुसार भागवती गति प्राप्त करेंगे। यह होगा वस्तुगुण से, भाव की जरूरत नहीं है। ऐसा इसलिये कि भगवान श्रीकृष्ण की स्वरूपाशक्ति श्री का अवतरण हुआ है।"

इसी क्रम में जब श्रीपोद्दारजी ने भौतिक शरीर को त्यागा तो श्रीराधा बाबा ने गीतावाटिका में ही उनके पार्थिक कलेवर को अग्नि को समर्पित किया एवं जगत् कल्याण हेतु उसी स्थान पर उनकी समाधि का निर्माण करवाया। पूज्य श्रीबाबा ने श्रीपोद्दारजी की समाधि के दर्शन के महत्व को समझाते हुए कहा कि —

"व्रजेन्द्रनन्दन प्रभु श्रीपोद्दारजी महाराज के पाँचभौतिक कलेवर की भस्मीभूत कणावलियाँ चिता की राख नहीं, अपितु प्रत्यक्ष चित् वृन्दावन है। इसके अणु-अणु, परमाणु-परमाणु में झलमल कर रही है व्रजकुलचन्द्रमा एवं भानुनृपदुहिता की नील-पीत द्युति।

मेरा अखण्ड विश्वास है कदाचित् अचिन्त्य-सौभाग्यवश कोई अधिकारी दर्शन प्राप्त कर लेगा इन चिन्मय अवशेषों के तो उसे अविलम्ब प्राप्ति हो जायेगी व्रजभाव की! अपनी अपनी भावभूमि के अनुसार ही उपलब्धि की गरिमा रहेगी अवश्य— परन्तु इसके अमोघ वस्तुगुण के समक्ष रीता तो कोई रह ही नहीं सकता। योग्य - अयोग्य का पार्थक्य नहीं है बीज वपन की इस अहैतु की कृपा में!! अतः भूमि के न रहने पर भावमसृण-भूमिका निर्माण हो जायेगा, भावभूमि होने पर अंकुर प्रस्फुटित हो उठेंगे, अंकुर होंगे तो द्रुमका रूप ग्रहण करने लगेंगे, द्रुम क्रमशः पल्लवित-पुष्पित हो जायेंगे और अन्त में उन्मीलित होकर ही रहेगा—नित्य चिन्मय भाव साम्राज्य का द्वार!!

मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ—इन भस्म-कणों के दर्शनमात्र से, इन समाधि की सच्चिन्मयी सत्ता के भाव बहुल क्षेत्र में प्रवेश

मात्र से, काल के प्रवाह में—एक दिन उस श्यामल अनुरक्ति में पर्यवसान परम सुनिश्चित सत्य है।''

(२) संतों का कथन है कि किसी भी प्राणी के निधन के पश्चात् , उसे उत्तम गति प्राप्त हो, इस निमित्त निम्नलिखित दो बातें सहायक सिद्ध होगीं —

(अ) ''तुलसी की उपासना श्रीराधारानी ने की थी श्रीकृष्ण के साथ मिलन होने के लिए। कल्पभेद से तुलसी की महिमा मैं देख रहा था, आप लोग सुनेंगे तो बहुतों को तो विश्वास ही नहीं होगा कि इतनी महिमा सच नहीं है। यहाँ तक भगवान शंकर ने कहा है कि जलती हुई चिता में यदि तुलसी काष्ठ का एक तिनका भी प्राणी के भाग्य से पड़ जाय तो फिर उसी क्षण विष्णु पार्षद उसे बैकुण्ठ ले जाते हैं।'' इसलिये तुलसी की माला सदैव गले में धारण किये रहना चाहिये। शौच-स्नान के समय शुद्धि की दृष्टि से इसे निकाला जा सकता है।

(ब) ''सन्तों के मुख से यह सुना है कि शरीर शांत होने के पश्चात् तत्क्षण श्रीविष्णुसहस्त्रनाम का पाठ आरम्भ कर दिया जाए तो दिवंगत आत्मा को अत्यन्त सुख एवं शान्ति मिलती है। शुद्ध उच्चारण के साथ किसी भी पारिवारिक सदस्य अथवा किसी ब्राह्मण के द्वारा कम से कम २१ पाठ तो किये ही जाने चाहियें।''

संतों के मतानुसार मनुष्य की मृत्यु के उपरान्त मृत शरीर को यथाशीघ्र अग्नि को समर्पित कर देना चाहिये। जब तक

ऐसा नहीं होता उसकी आत्मा उस शरीर के आस-पास ही मंडराती रहती है और मृत देह में पुनः प्रवेश करने का प्रयत्न करती है, और ऐसा नहीं कर पाने पर वह कष्ट पाती रहती है। देह के अग्नि समर्पण के पश्चात् उसका देह के प्रति मोह भंग हो जाता है।

(३) श्रीजयदयालजी गोयन्दका भी भगवत् प्राप्त एक गृहस्थ सन्त हुए हैं। वे पश्चिम बंगाल में बाँकुडा नगर के निवासी थे। इन्होंने ही गोरखपुर में गीताप्रेस की स्थापना की थी। इन्हीं के निर्देशानुसार श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार "कल्याण" मासिक पत्रिका के सम्पादक के रूप में कार्य संचालन करते रहे। श्रीगोयन्दकाजी प्रति वर्ष ऋषिकेश में सत्संग के लिए जाया करते थे और इसी सत्संग के समय एक बार उन्होंने निम्न विचार व्यक्त किये थे—

"..... आप लोग मेरे पर कृपा करके एक बात का तो निश्चय कर लीजिये कि अब मेरा और जन्म नहीं होगा। जो भी भाई-बहिन ऐसा निश्चय कर लेगा उसका फिर और जन्म नहीं होगा। पर कोई सन्देह करेगा कि क्या पता और जन्म होगा या नहीं तो उसके बारे में सन्देह है।"

(४) प्रायः हम सभी साधारण मानव की श्रेणी में आते हैं और कई बार जाने अनजाने लोगों से पाप कर्म घटित हो ही जाते हैं। मनुष्य की दुर्बलताएं तो उसके साथ सदैव लगी ही रहती हैं। इस कारण भी वह कई बार ऐसे कर्म कर बैठता है जो पाप की श्रेणी में आते हैं। हिन्दू धर्म की मान्यता यह है कि अपने-अपने कर्मों के अनुसार ही सबको सुख व दुःख

की प्राप्ति होती है। उससे बचने का एकमात्र मार्ग यही है कि आर्त भाव से भगवान से प्रार्थना कर उनसे क्षमा याचना या किसी सन्त का अनुग्रह प्राप्त किया जाए। ऐसा होने पर यह संभव है कि भगवान की ओर से दण्ड प्रक्रिया कुछ शिथिल कर दी जाए। यद्यपि अन्य पापों के लिए तो ऐसा हो सकता है पर हत्या के पाप का कोई निवारण नहीं है। भगवान की ओर से भी इसके लिए कोई रिआयत नहीं मिल सकती और न ही कोई सन्त इसमें किसी प्रकार की सहायता कर सकता है। अतएव कम से कम इस पाप से तो निरन्तर बचने का प्रयास करना ही चाहिये। किसी भी कारण से अगर कोई व्यक्ति किसी भी प्राणी की हत्या का निमित्त बनता है तो भी उसकी हत्या का दोष / पाप उसके सिर पर आयेगा ही। अत: यह बहुत आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति मांसाहार से कोसों दूर रहे। इसी संबंध में अपनी पुत्रवधू श्रीमती इन्दू डालमिया को मैंने दिनांक २८ सितम्बर २००७ को एक पत्र भेजा था, जिसके एक पैरे को मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ —

"पूज्य श्रीबाबा स्पष्ट कहा करते थे कि हत्या / मांसाहार के अपराधों के निवारण हेतु वे भी कुछ सहायता नहीं कर सकते हैं। पूज्य श्रीबाबा का क्या स्वरूप था, इससे संभवत: तुम अनभिज्ञ नहीं होगी। राधारानी व पूज्य श्रीबाबा को एक ही स्वरूप मानना चाहिये। राधारानी की किसी भी इच्छा की पूर्ति करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण सदैव लालायित रहते थे पर उनकी यह लालसा अपूर्ण ही रह जाती थी क्योंकि राधारानी के मन में श्रीकृष्ण

को पाने / सुखी करने के अतिरिक्त अन्य किसी इच्छा का संचार ही नहीं होता था। वे ही राधारानी स्वरूप पूज्य श्रीबाबा अगर यह कहें कि ''मैं चाह कर भी इसमें किसी की सहायता नहीं कर सकता।'' तो इसका अर्थ यह हुआ कि इस विषय में श्रीकृष्ण की दण्ड प्रक्रिया में वे भी कुछ कर पाने में असमर्थ हैं। यह कितनी गम्भीर बात है। अन्य अपराधों के संबंध में तो पूज्य श्रीबाबा यह भी कहते हैं कि अन्य अपराधों में तो भगवान की ओर से रिआयत मिल सकती है पर हत्या / मांसाहार जैसे जघन्य पाप में नहीं।'' हत्या एवं मांसाहार जैसे दोषों के लिए प्रभु के विधान में अत्यन्त कठोर दण्ड निर्धारित है-ऐसा पूज्य श्रीबाबा कहा करते थे।''

आधुनिक चिकित्सक भी अब स्वीकार करने लगे हैं कि मांसाहार स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है क्योंकि मनुष्य के शरीर की रचना इसके उपयुक्त नहीं। इस कारण पाश्चात्य देशों में भी अब अनेक लोग मांसाहार त्याग कर शाकाहार अपनाने लगे हैं। कई लोग यह प्रश्न भी उठाते हैं कि शाकाहार में भी हत्या निहित है, क्योंकि पेड़ पौधों में भी प्राण हैं। पशु-पक्षी के प्राण में और पेड़ पौधों के प्राण में क्या अन्तर है और पशु-पक्षियों के वध से क्या विसंगतियाँ उत्पन्न होती है, जो पेड़ पौधों में नहीं होती, इसका पूज्य श्रीबाबा के बतलाये अनुसार इन भ्रांतियों का निराकरण चौबीसवे विश्व शाकाहारी सम्मेलन के प्रतिनिधियों के समक्ष मैंने दिनांक २० नवम्बर १९७७ को नयी दिल्ली में अपने उद्‌बोधन के मध्य किया है, जो Annexure "A" के रूप में संलग्न है।

(५) इस कलिकाल में साधन, तप इत्यादि बहुत कठिन है। अतएव वर्तमान समय में भगवन्नाम, जप, भगवत् शरणागति और किसी भगवत् प्राप्त संत की कृपा पर निर्भरता ही ऐसा मार्ग है जो मनुष्य को जन्म-मरण के बंधन से छुटकारा दिला सकता है। श्रीपोद्दारजी ने स्पष्ट कहा है कि "श्रीकृष्ण साधन साध्य नहीं हैं, केवल कृपा साध्य हैं।" कृपा करके ही वे अपनाते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि —

"भगवान् कितने कृपालु हैं, उनकी कृपा कैसी है—यह कोई कैसे बतला सकता है। वे तो कृपामूर्ति ही हैं, उनमें कृपा ही कृपा है। वहाँ न्याय नहीं है, इन्साफ नहीं है—यही कहना पड़ता है। वे यदि न्याय या इन्साफ करते होते तो मुझ-सरीखे सहज पातकी की न जाने क्या गति हुई होती। लोगों के सामने मुँह दिखाने योग्य तो मैं रहता ही नहीं, जगत् मेरे मुँह पर थूकने से भी घृणा करता—अपने अपराधों का ध्यान आने से तो न्याय की बात यही जँचती है। पर उनकी कृपाशक्ति इतनी विचित्र है कि वह जहाँ भी कोई न्याय का प्रसंग आता है, वहीं उस न्याय में प्रवेश कर जाती है और न्याय को तत्काल कृपा के रूप में बदल देती है। सच्ची बात तो यह है कि भगवान सदा कृपामय ही हैं, उनमें कृपा-ही-कृपा है। इसलिए उनका न्याय भी कृपामूलक ही है। अतएव निरन्तर उनकी कृपा पर दृढ़ विश्वास रखना चाहिये और उस परम करुणामयी माँ कृपादेवी के चरणों पर अपने को बिना शर्त न्योछावर कर देना चाहिये। बस, निश्चिन्त हो जाना चाहिये—कृपा पर पूर्ण निर्भर हो जाना चाहिये।" याद रखना चाहिये —

''जासु कृपा नहिं कृपा अघाती।''

''प्रभु मूरति कृपामयी है।''

भगवत् शरणागति के संबंध में तो भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने श्रीमुख से गीता के उपदेश में कहा है कि —

''सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥''

किसी ने कहा है —

''गुनाहगारों पे तेरी रहमत इतनी देखी तो,
बेगुनाह भी चिल्ला उठे कि हम भी गुनाहगार हैं।''

SAYINGS OF SHRI RAMANA MAHARISHI

"Sir, could you please explain to me how the mechanics of destiny has been altered in the case of your disciple. I am baffled.

He should have died many months ago. Could you please explain this enigma to me?

The Saint roared with laughter and replied. "Divine Grace is much more powerful than destiny. Destiny is just a mechanical force which operates on the basis of the ego. Those who surrender and rely totally on God or Guru put themselves out of the reach of destiny and are under His direct guidance and protection. Then destiny is powerless to adversely affect in any way."

श्रीपोद्दारजी द्वारा रचित एक पद भी इसके साथ Annexure "B" के रूप में दे रहा हूँ। एक भक्त की कितनी मधुर उलाहना है; प्रभु को। प्रभु की भक्त वत्सलता का एक नमूना देखिए Annexure "C" के रूप में।

(६) ऋषि-मुनियों एवं शास्त्रों के अनुसार देवाधिदेव, चन्द्रमौलि, गंगाधर, भगवान शंकर को ''आशुतोष'' एवं ''औढरदानी'' की संज्ञा दी गई है—वे शीघ्र ही प्रसन्न हो, याचक को देते समय उसकी पात्रता, अपात्रता का विचार नहीं करते। याचकों को देते रहने में ही उन्हें प्रसन्नता का बोध होता है। एक बात और — विधाता द्वारा लिखी हुई किसी की भाग्य रेखा में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। भगवान श्रीराम / श्रीकृष्ण के अतिरिक्त केवल भगवान शंकर ही एक हैं जो भाग्य रेखा में समूल परिवर्तन कर नवीन भाग्य का निर्माण कर देने में समर्थ हैं। रामचरितमानस में आया है कि ''विधि का लिखा को मेटन हारा।'' वहीं यह भी लिखा है कि ''भाविहि मेटि सकहि त्रिपुरारी।''

भगवान शंकर का भगवान श्रीराम के साथ क्या संबंध है इसके बारे में रामचरितमानस में आया है कि ''सेवक स्वामी सखा सिय पिय के'' अतः भगवान शिव एवं प्रभु श्रीराम अभिन्न रूप हैं। अतः भगवान शंकर की आराधना भी हमारे जीवन पथ को ईश्वरोन्मुख कर श्रीराम / श्रीकृष्ण प्रेम प्रदान कर सकती है।

(७) भगवद् प्रदत्त सम्पन्नता यदि किसी के पास है तो उस पर अहंकार नहीं करना चाहिये। किसी ने कहा है कि —

"शाहे ईंरा घर से निकले सफ़र के लिये,
आखिर दो गज़ ज़मी न मिली कब्र के लिये॥"

चाणक्य ने कहा है कि —

"गुणों से ही मनुष्य महान बनता है, महल के शिखर पर बैठ जाने से कौआ गरुड़ नहीं बनता।"

अन्यत्र किसी ने कहा है कि —

"हृदय में स्वच्छता से चरित्र में शुद्धि आती है, चरित्र में शुद्धि से जीवन में सुन्दरता आती है, जीवन में सौन्दर्य से परिवार में माधुर्य आता है, परिवार में माधुर्य से राज्य में संतुलन आता है, राज्य में संतुलन से विश्व में शान्ति आती है।"

(८) पूज्य श्रीबाबा के अनुसार मनुष्य की भावना प्रभु के प्रति यह होनी चाहिये—

"निकम्मा हूँ निकम्मी ज़िन्दगी है, मेरी हस्ति को खुद शर्मिन्दगी है,
दयालु दीनबन्धु के सहारे, थका बैठा हूँ मंजिल के किनारे,
हमेशा है गुनहगारों पै रहमत, हमेशा है तेरी बख़शीश की आदत,
किया दुश्मन का भी उद्धार तूने, उतारा डूबतों को पार तूने॥"

(९) पूज्य श्रीबाबा एक बात और कहा करते थे —

"साधारणत: आज के युग का मानव भगवान की कृपा प्राप्ति हेतु भगवान के रूप में उनकी पूजा करने के लिये जो जप, तप, त्याग, साधन आवश्यक हैं, वह कर नहीं सकेगा। अतएव एक अन्य सरल मार्ग यह है कि भगवान से अपना कोई

सांसारिक सम्बन्ध जोड़ लें जैसे माता, पिता (श्रद्धा भाव), स्वामी (दास्य भाव), पुत्र (वात्सल्य भाव), भाई (श्रद्धा या वात्सल्य भाव), सखा (सख्य भाव), पति (माधुर्य भाव) । श्रीकृष्ण हृदय से जोड़ा हुआ इनमें से कोई भी संबंध स्वीकार कर लेते हैं — परन्तु तब यह आवश्यक होगा कि फिर प्रेम का व्यवहार तदनुरूप पूर्ण रूपेण हो — इसकी सच्चाई में किसी प्रकार की कमी नहीं रहनी चाहिये । इसे आराधना का ही प्रतीक मान कर सफल रूप में कर पाने पर इस माध्यम से भी भगवत् कृपा की प्राप्ति हो सकती है ।''

(१०) एक कवि ने अपनी कविताओं की निम्नलिखित पंक्तियों में मानव को सावधान किया है —

''पेट में पोढ्यो, और पोढ्यो महि जननी संग, पोढ़ के बाल कहायो, पोढ्न लग्यो त्रिया संग ही, जब सारी उमर हँसी खेल गंवायो । क्षीर समुद्र के पोढनहार को, धरि ध्यान कबहुँ नहीं ध्यायो, पोढ्त पोढ्त पोढ़ गयो, अब चिता पै पोढ्न को दिन आयो ॥''

आप सबका जीवन मंगलमय हो, सबका कल्याण हो, सब प्रभु के कृपाभाजन बने ।

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भागभवेत ॥''

(विष्णुहरि डालमिया)

Annexure - "A"

चौबीसवें विश्व शाकाहारी सम्मेलन के प्रतिनिधियों के समक्ष स्वागत समिति के अध्यक्ष श्रीविष्णुहरि डालमिया द्वारा २० नवम्बर, १९७७ को नयी दिल्ली में दिया गया अभिभाषण

मित्रों!

विश्व शाकाहारी सम्मेलन के इस चौबीसवें अधिवेशन में, जिसका आयोजन शाकाहार को जीवन-पद्धति के रूप में स्वीकार करने वाले देश भारत में किया गया है, आप सबका मैं हार्दिक स्वागत करता हूँ। अनेक व्यक्तिगत, पारिवारिक, व्यावसायिक, सामाजिक, राजनैतिक व्यस्तताओं के अनन्तर भी विश्व के विभिन्न भागों से पधारकर आप लोग जीव-दया एवं आध्यात्मिकता के इस साधन के प्रचार-प्रसार में अपना भरपूर सहयोग दे रहे हैं—इससे आपकी इस कार्य के प्रति निष्ठा का परिचय मिलता है तथा भविष्य में इसकी सफलता के प्रति आश्वासन भी। आज हम जिस महान उद्देश्य को लेकर विचार-विमर्श करने एकत्र हुए हैं, वह मानव मात्र के लिए ही नहीं, अपितु प्राणि मात्र के लिए कल्याणकारी है। ऐसे पवित्र कार्य में भाग लेने में तथा यथाशक्ति योगदान करने में मुझे अत्यन्त आत्म-संतोष का अनुभव हो रहा है।

शाकाहार के विषय में विचार करते समय मुझे इस बात का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि प्रकृति ने मनुष्य के शरीर की रचना शाकाहार के ही अनुरूप की है। जीव-विज्ञान के अध्येताओं ने इसे स्पष्ट कर दिया है कि मनुष्य मांसभक्षी पशुओं की भाँति चीर-फाड़ करने योग्य शारीरिक अंगों के अभाव में मांसाहारी नहीं हो सकता, और जब वह मांसाहारी नहीं है तो उसे शाकाहारी ही होना चाहिए। स्वास्थ्य

की दृष्टि से तथा दीर्घ जीवन के लिए भी मानव के लिए शाकाहार ही उत्तम है। मांसाहार से शरीर के लिए जो पौष्टिक तत्व प्राप्त होने की मान्यता है, उससे कहीं अधिक पौष्टिक तत्व शाकाहारी पदार्थों में विद्यमान हैं। इन विषयों पर विश्व के अनेक विद्वानों तथा जीव-वैज्ञानिकों ने बड़ी गम्भीरता से विचार एवं अध्ययन किया है और विस्तार से अपने तत्सम्बन्धी ग्रन्थों में उल्लेख किया है। अतः उनके उद्धरण देकर उन्हें दुहराने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

शाकाहार विषयक जो पक्ष मैंने आज चुना है, उसका सम्बन्ध आध्यात्मिक जगत से है। हमारे भारतीय आध्यात्मिक मनीषियों ने अपने अनुभवजन्य सत्य के आधार पर मांसाहार को त्याज्य बतलाकर शाकाहार पर ही क्यों बल दिया है — अध्यात्म-साधना के क्रम में उन्हें क्या अनुभव हुए हैं — इस विषय में भारतीय मनीषियों एवं हमारे धर्मग्रन्थों द्वारा प्रतिपादित दृष्टिकोण मैं आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

मेरा अनुमान है कि यहाँ उपस्थित हमारे बन्धु उस सर्वशक्तिमान सत्ता को अवश्य स्वीकार करते होंगे, जिसने इस सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की है तथा जिसके विधि-विधान के अनुरूप ही विभिन्न प्रकार के प्राणि-पदार्थों का सृजन हुआ है। उन सभी प्राणि-पदार्थों के रूप, गुण एवं उपयोग में विविधता होते हुए भी सब एक-दूसरे के पूरक हैं और उनमें से किसी की भी अनुपस्थिति से सृष्टि-क्रम में विशृंखलता उत्पन्न होती

है। अतः सबसे पहला प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सृष्टिकर्त्ता द्वारा सर्जित इस संतुलित सृष्टि में असन्तुलन उत्पन्न करने का — जिस वस्तु का निर्माण हम नहीं कर सकते, उसे नष्ट करने का — अधिकार हमें है क्या ? जिस प्राण-शक्ति (चेतना) को हम उत्पन्न नहीं कर सकते, किसी प्राणहीन शरीर में जिसको पुनः स्थापित नहीं कर सकते, उसी प्राणशक्ति को किसी प्राणि-पदार्थ से अलग करने का हमें कोई नैतिक अधिकार है क्या ? सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी तथा विवेक-शक्ति-सम्पन्न होते हुए भी इस प्रश्न का हम मानवों के पास कोई संतोषजनक उत्तर नहीं है, भले ही अनर्गल तर्क के आधार पर हम वाद-विवाद करें।

आज भले ही हम अपनी स्वाद-लिप्सा के लिए — अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए दूसरों के प्राण लें, पर इससे हमें अपने सुख, कल्याण की आशा नहीं रखनी चाहिए। हमारे आदि आध्यात्मिक मनीषियों ने बार-बार पुकार-पुकार कर कहा है — जो बात, जो आचरण, जो व्यवहार हमें अपने स्वयं के लिए अप्रिय है, दूसरों के प्रति वह व्यवहार करते समय भी हमें उन बातों का पूरा ध्यान रखना ही चाहिए। जहाँ हमें विपरीतता की अनुभूति होती है, उस बिन्दु पर दूसरे को लाकर खड़ा करना हमारी अनधिकार चेष्टा है, सर्वथा सर्वांश में हमारा अनौचित्य है। यदि हम ऐसा करते हैं तो निसर्ग के नियमानुसार हमें दण्ड का भागी होना ही पड़ेगा। तर्क के आधार पर यह सत्य आज तक न तो मिथ्या हुआ है और न ही भविष्य में कभी हो सकेगा।

फिर प्रश्न उठता है कि हमें अपने जीवन की रक्षा के लिए क्या खाना चाहिए और क्या नहीं। यह कहा जाता है कि यदि हम वनस्पति वर्ग की वस्तुएँ भी खाद्य के रूप में ग्रहण करें तो उनमें भी चेतना है ही और उन्हें काटते, छीलते, खाते समय भी हमें उस चेतनता को नष्ट करना ही पड़ता है जिससे वृक्ष, लता, वल्लरियाँ सभी कष्ट का अनुभव करते हैं। अतः प्रश्न उपस्थित होता है कि वनस्पतियों को आहार के रूप में ग्रहण करने पर क्या उनकी हिंसा हिंसा की श्रेणी में नहीं आयेगी ? चलने-फिरने, श्वास लेने में भी तो असंख्य क्षुद्र परमाणुओं की हत्या होती है, जिनकी रक्षा चाहकर भी हम नहीं कर सकते। तो क्या हमारा अपना जीवन धारण करना भी हिंसा का कारण बनता है ? इसके उत्तर के लिए हमें हिंसा और अहिंसा के भेद को समझना होगा।

चूँकि सम्पूर्ण जगत उस सर्वशक्तिमान द्वारा सर्जित तथा उसकी चित् शक्ति से व्याप्त है, अतः किसी भी प्राणि-पदार्थ में चेतना का नितान्त अभाव हो, ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती। किसी-न-किसी अंश में सृष्टि का प्रत्येक प्राणि-पदार्थ चेतना युक्त है, भले ही उसमें चेतना की प्रबुद्धता अत्यल्प हो। चेतना की प्रबुद्धता के आधार पर ही संसार के जीवों की दो श्रेणियाँ मानी गयी हैं — एक जड़ और दूसरा चेतन। जिस जीव में चेतना की प्रबुद्धता कम होती है उसे जड़ तथा विकसित प्रबुद्धता वाले जीव को चेतन कहा गया है। हिंसा और अहिंसा के अन्तर पर विचार करने पर हमें ज्ञात होगा कि किसी जीव की हत्या तभी

हिंसा के अन्तर्गत आयेगी जबकि उस प्राणि-पदार्थ की चेतना में प्रबुद्धता इतनी विकसित हो कि हत्या में जो duration, volume and gravity of pain अपेक्षित है, वह विद्यमान हो। वनस्पति जगत में चेतना इतनी प्रबुद्ध नहीं होती।

उदाहरण के लिए, दही में बैक्टीरिया रहते ही हैं और उसे खाते समय वे बैक्टीरिया समाप्त होते हैं। तुरन्त जमाये हुए दही में वे बैक्टीरिया उतने प्रबुद्ध नहीं होते, जितने दही जमाने के कई घण्टे पश्चात्। यह प्रबुद्धता समय के अन्तराल से बढ़ती ही चली जाती है, फिर भी बैक्टीरिया इतने प्रबुद्ध नहीं होते कि उनकी हत्या को हिंसा के अन्तर्गत रखा जा सके, क्योंकि इस हत्या में और हिंसा के duration, volume and gravity of pain में बहुत बड़ा अन्तर है। जैसे श्वास लेने में अप्रबुद्ध कीटाणु नष्ट होते हैं, वैसे ही दही में भी बैक्टीरिया नष्ट होते हैं, अतः अनायास होनेवाली इस हिंसा को हिंसा की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

इसके अनन्तर स्थान आता है गेहूँ, चावल, दाल आदि का। वैसे तो ये सभी वनस्पति के ही अंग हैं, परन्तु इनका छेदन होता है परिपक्व होने पर ही, जबकि ये लगभग चेतनाहीन हो जाते हैं एवं इनकी प्रबुद्धता उतनी नहीं होती कि इसे हिंसा की श्रेणी में माना जा सके।

साधारणतया लोग कहा करते है कि मानव के लिए गाय के दूध का विधान क्यों किया गया है, जबकि वह भी पशु-शरीर से ही उत्पन्न होता है और उसके बछड़े के पालन-

पोषण के लिए होता है। इस विषय में ध्यान देने योग्य बात यह है कि दूध देना गाय का स्वभाव है, उसे निकालने में हिंसा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। दुधारू गाय का दूध यदि उसके थनों से समय पर न निकाला जाय, तो उससे गाय को कष्ट होता है, इसलिए गाय का दूध निकालना अपराध नहीं, उपकार है। इसके अतिरिक्त वह दूध किसी अन्य जीव के पालन-पोषण के लिए होता है, चाहे वह अन्य प्राणी उसका अपना बछड़ा हो या मानव। साधारणतया गाय के दूध की मात्रा बछड़े की आवश्यकता से अधिक होती है। इसके अलावा यदि हम बछड़े के पालन-पोषण का अन्य समुचित प्रबन्ध कर देते हैं तो भी बदले में गाय का दूध ले सकते हैं। इसमें हिंसा का जरा भी स्थान नहीं है। हाँ, यदि बछड़े के पोषण का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं किया जाता है और दूध न मिलने से बछड़े की मृत्यु होती है तो वास्तव में यह हिंसा है और त्याज्य है।

अब हमें विचार करना है कि जब हम किसी प्राणी की हिंसा करने को उद्यत होते हैं, हिंसा करते हैं, तब हिंसा के उन क्षणों में नित्य सिद्ध निसर्ग के अनुसार कौन-कौन-सी घटनाएँ होती हैं तथा उनका अन्तरिक्ष में और वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है।

कसाई जब पशु को काटने के लिए चलता है, उस समय कैसी, क्या-क्या अनुभूति मूक पशु को होती है और उसका उस पर क्या प्रभाव पड़ता है, सर्वप्रथम विचारणीय विषय यही है। प्रत्येक प्राणि-पदार्थ के कण-कण में जीने की अदम्य लालसा

होती है। कोई भी मरना नहीं चाहता, यद्यपि सभी जानते हैं कि मरना अनिवार्य है और हमारे न चाहने पर भी मरना पड़ेगा ही। विवेक शून्य मूक पशु में भी यह जिजीविषा (जीने की लालसा) अत्यन्त प्रबल होती है। अपने प्राण की रक्षा के लिए वह हर सम्भव प्रयत्न करता है। वही पशु जब कसाई के हाथों पड़ जाता है तो क्या उसकी जीवित रहने की लालसा में कोई कमी आती है ? नहीं, अपितु उसे यह भान हो जाता है कि अब मरना ही पड़ेगा। उसके प्राणों में भयजनित, प्राण-वियोगजनित, असहायताजनित, कातरता-पीड़ाजनित व्यथा की उत्ताल तरंगे उठने लगती हैं और उन तरंगों के आपस के टकराव से उस पशु के चारों ओर एक विशेष प्रकार की आणविक किरणों का चक्रव्यूह निर्मित हो जाता है। प्राण-वियोग की उस घड़ी में जीव की जितनी, जैसी प्रबुद्ध अथवा अप्रबुद्ध जिजीविषा होती है, भय से त्राण पाने की प्रबल लालसा होती है, उसी के अनुरूप बलवती उन किरणों का निर्माण होता है। ये महाशक्तिशाली आणविक किरणें कुछ ही क्षणों में सम्पूर्ण अन्तरिक्ष के कण-कण में परिपूरित हो जाती हैं। इतना ही नहीं, कुछ क्षणों के लिए व्यथा के इन रक्तिम परमाणुओं से सम्पूर्ण अन्तरिक्ष धूमिल-सा हो जाता है। ये किरणें इतनी प्रबल होती हैं कि इनकी गति में कोई अवरोधक नहीं बन सकता। ये सीधी तीर की तरह चल पड़ती हैं अनन्त आकाश की ओर। अपनी अबाध गति से अत्यन्त शीघ्रता से आगे बढ़ती हुई कुछ ही क्षणों में ये फैल जाती हैं सम्पूर्ण व्योम में और वेदना के तन्तुओं से निर्मित एक सशक्त, परन्तु अत्यन्त

झीना-सा आवरण डाल देती है सम्पूर्ण सृष्टि पर। सम्पूर्ण प्रकृति स्तब्ध-सी हो उठती है। समष्टिमें आनन्दका जो एक सहज उद्दीपन रहता है, वह स्पन्दनहीन हो जाता है। परन्तु ये वहीं समाहित नहीं होतीं। उनका आश्रय-स्थल तो होती है वह मृत देह ही, इसलिए उन्मुक्त गगन में अपना यह भयंकर प्रभाव छोड़कर वे उसी प्राणशून्य शरीर में पुनः समाविष्ट हो जाती हैं। इसके साथ ही उस प्राणशून्य शरीर का क्षुद्रतम अंश भी उस पशु के हाहाकार का पिण्ड बन जाता है। वह मांसखण्ड जहाँ भी रखा जाता है, जिस मुख के माध्यम से उदरस्थ किया जाता है, जिनके द्वारा पकाया जाता है, जिसके आदेश एवं धन से उसका क्रय-विक्रय होता है, उन समस्त स्थलों पर उस मांस-पिण्ड में लुप्त हुई उन प्रबल आणविक किरणों का संक्रमण होता ही है।

इतना ही नहीं, मांस-भक्षण करने वाले मनुष्यों के जीवन में प्रत्यक्ष कुछ ऐसे अशुभ संस्कार जागरूक हो उठते हैं जो उन्हें मानवता की सर्वथा विरोधी दिशा में ले जाते हैं। मांसाहारियों के जीवन के सम्पूर्ण सात्विक परमाणु नष्ट हो जाते हैं और धीरे-धीरे उनमें नृशंसता, निर्ममता, हाहाकारकी वेदनात्मक किरणें प्रच्छन्न रूप से मूर्त होती चली जाती हैं। यही नहीं, भविष्य के मन का निर्माण भी होता है बर्बरता के धरातल पर ही। मांसाहारियों के जीवन में पाशविक भावनाएँ अनायास स्थान पाकर दृढ़-दृढ़तर होती चली जाती हैं।

हिंसा के परिणाम स्वरूप सात्विक परमाणुओं के नष्ट होने से आज सम्पूर्ण मानव समाज नृशंसता, निर्ममता से त्रस्त

है। जिनके पास भौतिक साधनों का बाहुल्य है, वे भी दु:खी एवं अशान्त हैं। इसका एकमात्र कारण आध्यात्मिकता का ह्रास है। अध्यात्म-साधना के लिए जो सात्विक परमाणु सहायक होते हैं वे समष्टि में आनन्द का जो एक सहज उद्दीपन रहता है, उसके — जैसा कि पहले कहा जा चुका है — स्पन्दनहीन हो जाने के कारण इस दिशा में साधक के लिए पूरे सहायक नहीं हो पाते। इस प्रकार मांसाहारी प्राणी न केवल अपने लिए ही अशुभ का निर्माण करता है, बल्कि प्रत्येक प्राणी के लिए भी किसी-न-किसी रूप में अशुभ का विस्तार कर ही देता है।

औद्योगिक प्रदूषण द्वारा अथवा अन्य प्रकार से मानव द्वारा भौतिक वातावरण को जो क्षति पहुँचायी जा रही है, उसके गम्भीर दुष्प्रभाव से हम सब दिनों दिन सजग होते जा रहे हैं। आध्यात्मिक वातावरण को दूषित करने से लोगों पर उसका कितना घातक प्रभाव पड़ेगा ? इस पर हमें चिन्तन करना है और हमें आशा है कि मनुष्य की आध्यात्मिक एवं भौतिक उन्नति के लिए इस सजगता में वृद्धि और विस्तार होगा।

अत: मेरा विश्वास है कि विश्व में सुख-शान्ति की स्थापना तथा मानव मात्र की आध्यात्मिक उन्नति के लिए हिंसा — मांसाहार — का सर्वथा परित्याग करके शाकाहार को अपनाना अनिवार्य है जिससे हम सृष्टि में व्याप्त सहज आनन्द की अनुभूति कर अपने जीवन-काल में तो सुखी एवं शान्त रह ही सकें, निर्विघ्न अध्यात्म साधना द्वारा अपना पारलौकिक जीवन भी सुधार सकें।

- धन्यवाद -

Annexure - "B"

पतित नहीं जो होते जग में, कौन पतित पावन कहता?
अधमो के अस्तित्व बिना 'अध्मोद्धारण' कैसे कहता?
होते नहीं पातकी, 'पातकि-तारण' तुमको कहता कौन?
दीन हुये बिन, 'दीन दयालो'! 'दीनबन्धु' फिर कहता कौन?
पतित अधम पापी दीनों को क्यों कर तुम बिसार सकते।
जिनसे नाम कमाया तुमने, क्यों कर उन्हें टाल सकते।
चारों गुण मुझमें पूरे हैं, मैं तो विषेश अधिकारी हूँ।
नाम बचाने का साधन हूँ, यों भी तो उपकारी हूँ।
इतने पर भी नाथ! तुम्हें यदि मेरा स्मरण नहीं होगा।
दोष क्षमा हो, इन नामों का रक्षण फिर क्यों कर होगा।
सुन प्रलापयुत पुकार, अब तो करिये नाथ शीघ्र उद्धार।
नहीं, छोड़िये नामों को-यों कहने को होता लाचार।
जिसके कोई नहीं, तुम्हीं उसके रक्षक कहलाते हो।
मुझे नाथ अपनाने में फिर क्यों इतना सकुचाते हो?
नाम तुम्हारे चिर सार्थक हैं, मेरा दृढ़ विश्वास यही।
इसी हेतु, पावन कीजै प्रभु! मुझे कहीं से आस नहीं।
चरणों को दृढ़ पकड़े हूँ, अब नहीं हटूँगा किसी तरह।
भले, फेंक दो, नहीं सुहाता अगर पड़ा भी इसी तरह।
पर यह रखना स्मरण नाथ! जो यों दुतकारोगे हमको।
अशरण-शरण, अनाथ-नाथ, प्रभु कौन कहेगा फिर तुमको?

Annexure - "C"

प्रबल प्रेम के पाले पड़ कर प्रभु को नियम बदलते देखा,
उनका मान टले टल जाये, जन का मान न टलते देखा,
जिनकी केवल कृपा दृष्टि से, सकल सृष्टि को पलते देखा,
उनको गोकुल के गोरस पर, सौ सौ बार मचलते देखा,
जिनके चरण कमल कमला के, करतल से न निकलते देखा,
उनको वृज करील कुँजों में, कन्टक पथ पर चलते देखा,
जिनका ध्यान विरँचि, शम्भु, सनकादिक से न सम्हलते देखा,
उनको ग्वाल सखा मन्डल में लेकर गेंद उछलते देखा,
जिनकी बंक भृकुटि के भय से, सागर सप्त उबलते देखा,
उनको ही यशुदा के भय से, अश्रु बिन्दु दृग ढलते देखा ॥

"श्रीकृष्णलीला का चिन्तन" पुस्तक के पृष्ठ संख्या १७७ में प्रकाशित "यमलार्जुन के अतीत जन्म की कथा; यमलार्जुन-उद्धार" लेख से उद्धृत अंश—

"..... वे यमलार्जुनवृक्ष — नलकूबर-मणिग्रीव यह नहीं जान सके कि भवबन्धन में पड़े प्राणियों को एक बार किसी भी भाव के द्वारा उनसे सम्बन्ध मान लेने मात्र में मुक्तिदान करने वाले मुकुन्द, बाल्यलीलारसमत्त श्रीकृष्णचन्द्र आज जननी के दिये हुए उलूखल-बन्धन से अपनी मुक्ति पाने की अभिसंधि लेकर उनका आश्रय लेने आये हैं। यह जानना उनके लिये सम्भव ही नहीं। यह तो वे ही जान पाते हैं, जो अचिन्त्य सौभाग्यवश व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र की अथवा उनके किन्हीं परिकर की कृपा का एक कण पाकर उनके अनन्त ऐश्वर्य को भूल जाते हैं, जिनके हृदय की बढ़ती हुई विशुद्ध प्रेमरसधारा में श्रीकृष्णचन्द्र का अनन्त ऐश्वर्य सदा के लिये विलीन हो जाता है, जो सदा उस रस-प्रवाह में ही बहते हुए केवल मात्र उनसे रागमय सम्बन्ध ही रख पाते हैं, सदा उन्हें अपना सखा, पुत्र, प्राणवल्लभ के रूप में ही अनुभव करते हैं।"

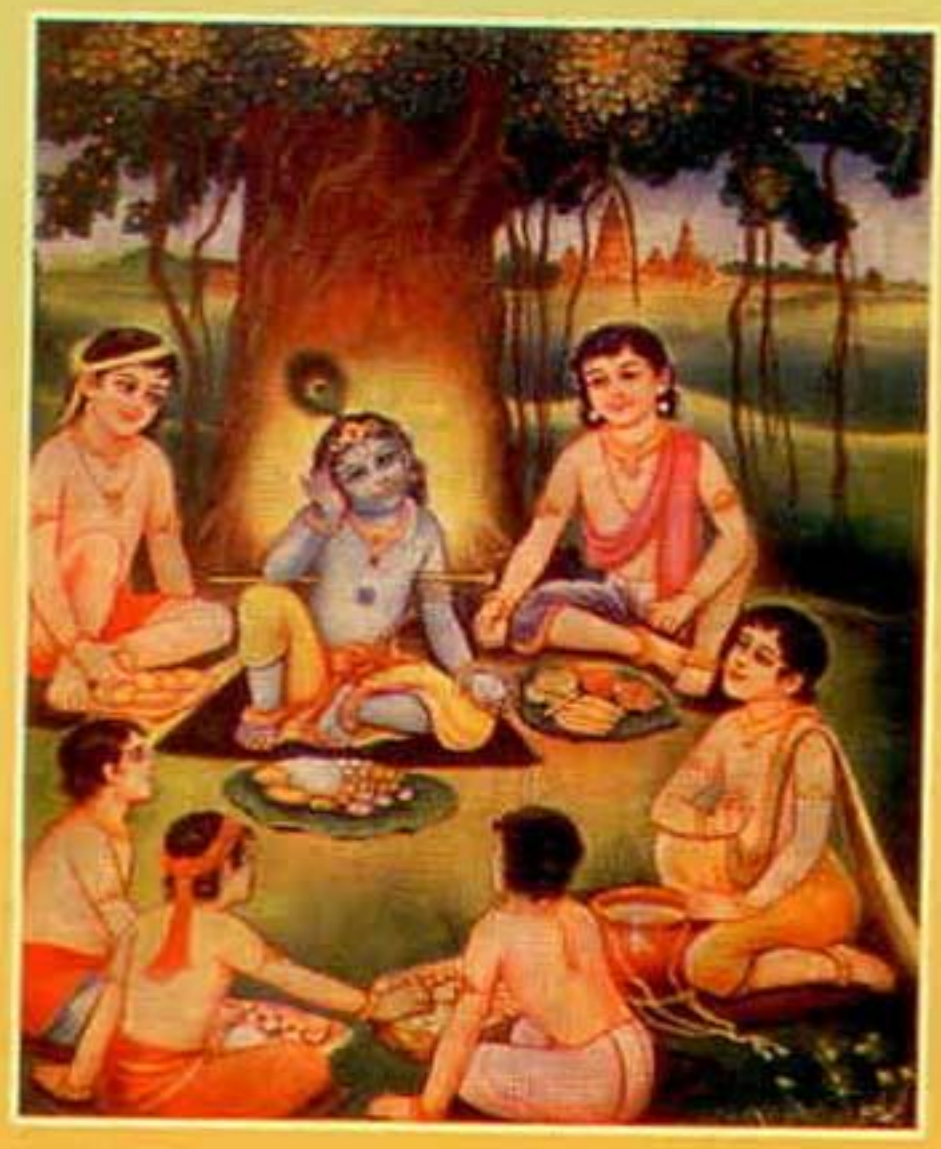

सेठ श्रीजयदयालजी गोयन्दका, श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एवं श्रीराधाबाबा के अमृतोपदेशों के कुछ अंश

- विष्णुहरि डालमिया